

परिवर्तनकालस्यानन्तस्यापि क्षयदर्शनादनैकान्तिक आनन्त्यहेतुरिति चेन्न, उभयोर्भिन्ननिबन्धनतः
 प्राप्तानन्तयोः साम्याभावतोऽर्धपुद्गलपरिवर्तनस्य वास्तवानन्त्याभावात् । तद्यथा-
 अर्धपुद्गलपरिवर्तनकालः सक्षयोऽप्यनन्तः, छद्मस्थैरनुपलब्धपर्यन्तत्वात् ।
 केवलमनन्तस्तद्विषयत्वाद्वा । जीवराशिस्तु पुनः संख्येयराशिक्षये १ (मु. क्षयोऽपि ।) ऽपि
 निर्मूलप्रलयाभावादनन्त इति । अथवा छद्मस्थानुपलब्धपेक्षामन्तरेणानन्त्यादिति विशेषणाद्वा
 नानैकान्तिक इति । किं च सव्ययस्य निरवशेष्येऽभ्युपगम्यमाने कालस्यापि निरवशेषक्षयो जायेत,
 सव्ययत्वं प्रत्यविशेषात् । अस्तु चेन्न, सकलपर्यायप्रक्षयतोऽशेषस्य वस्तुनः
 प्रक्षीणस्वलक्षणस्याभावापत्तेः । मुक्तिमनुपगच्छतां कथं पुनर्भव्यत्वमिति चेन्न,
 मुक्तिगमनयोग्यतापेक्षया तेषां भव्यव्यपदेशात् । न च योग्याः ---

इसलिये भव्य राशिके क्षय न होनेमें जो अनन्तरूप हेतु दिया है वह व्यभिचरित हो जाता है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, भिन्न भिन्न कारणोंसे अनन्तपनेको प्राप्त भव्यराशि और
 अर्धपुद्गल-परिवर्तनरूप काल इन दोनों राशियोंमें समानताका अभाव है, और इसलिये
 अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल वास्तवमें अनन्तरूप नहीं है । आगे इसीका स्पष्टीकरण करते हैं ---

अर्धपुद्गल-परिवर्तनकाल क्षयसहित होते हुए भी अनन्त है, क्योंकि, छद्मस्थ जीवोंके
 द्वारा उसका अन्त नहीं पाया जाता है । अथवा केवलज्ञान अनन्त है और उसका विषय होनेसे वह
 अनन्त है । जीवराशि तो संख्यातवें भागरूप राशिके क्षय हो जाने पर भी निर्मूल नाश नहीं होनेसे,
 अनन्त है । अथवा, पहले जो भव्य राशिके क्षय नहीं होनेमें अनन्तरूप हेतु दे आये हैं उसमें
 'छद्मस्थ जीवोंके द्वारा अनन्तकी उपलब्धि नहीं होती है, इस अपेक्षाके विना ही 'यह विशेषण लगा
 देनेसे अनैकान्तिक दोष नहीं आता है । दूसरे व्ययसहित अनन्तके सर्वथा क्षय मान लेनेपर
 कालका भी सर्वथा क्षय हो जायगा, क्योंकि, व्ययसहित होनेके प्रति दोनों समान हैं ।

शंका --- यदि ऐसा ही मान लिया जाय तो क्या हानि है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, ऐसा माननेपर कालकी समस्त पर्यायोंके क्षय हो जानेसे
 संपूर्ण द्रव्योंकी स्वलक्षणरूप पर्यायोंका भी अभाव हो जायगा और इसलिये समस्त वस्तुओंके
 अभावकी आपत्ति आ जायगी ।

शंका --- मुक्तिको नहीं जानेवाले जीवोंके भव्यपना कैसे बन सकता है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, मुक्ति जानेकी योग्यताकी अपेक्षा उनके भव्य संज्ञा बन जाती है। जितने भी जीव मुक्ति जानेके योग्य होते हैं वे सब नियमसे कलंकरहित होते हैं ---

सर्वेऽपि नियमेन निष्कलङ्का भवन्ति, सुवर्णपाषाणेन व्यभिचारात् । उक्तं च---

एय-णिगोद-सरीरे जीवा दव्व-प्पमाणदो दिट्ठा ।

सिध्देहि अणंत-गुणा सब्बेण वितीद-कालेण १

(प्रा. पं. १,८४। गो. जी. १९६.) ॥२१०॥

तव्दिपरीताः अभव्याः । उक्तं च--

भविया सिध्दी जेसिं जीवाणं ते भवन्ति भव-सिध्दा^१

तव्विवरीदाभव्या संसारादो ण सिज्झन्ति^२ (प्रा. पं. १,१५६^१ गो. जी. ५५७

(भवसिध्द) अनेन सिध्देर्लब्धियोग्यताभ्यां भव्यानां द्वैविध्यमुक्तं^१ जी. प्र. टी.)^२११^१

भव्यगुणस्थानप्रतिपादनार्थमाह----

भवसिध्दिया एइंदिय-प्पहुडि जाव अजोगिकेव्वलि ति^३ (भव्यानुवादेन भव्येषु चतुर्दशापि सन्ति । स. सि. १.८.)^११४^२

सुगममेतत् ।

अभव्यानां गुणस्थाननिरूपणायह ---

अभवसिध्दिया एइंदिय-प्पहुडि जाव सण्णि-मिच्छाइट्ठि ति ४ (अभव्य आद्य एव स्थाने । स. सि. १.८.)

ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि, सर्वथा ऐसा मान लेने पर स्वर्णपाषाणसे व्यभिचार आ जायगा । कहा भी है---

द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा सिध्दराशिसे और संपूर्ण अतीत कालसे अनन्तगुणों जीव एक निगोदशरीरमें देखे गये हैं ॥२१०॥

भव्योंसे विपरीत अर्थात् मुक्तिगमनकी योग्यता न रखनेवाले अभव्य जीव होते हैं। कहा भी है ---

जिन जिवोंकी अनन्तचतुष्टयरूप सिद्धि होनेवाली हो अथवा जो उसकी प्राप्तिके योग्य हो उन्हें भव्यसिद्ध कहते हैं। और इनसे विपरीत अभव्य होते हैं। ये संसारसे निकलकर कभी भी मुक्तिको प्राप्त नहीं होते हैं ॥२११॥

अब भव्यजीवोंके गुणस्थानोंका प्रतिपादन करनेकेलिये सूत्र कहते हैं ---

भव्यसिद्ध जीव एकेन्द्रियसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थानतक होते हैं ॥१४२॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है---

अब अभव्यजीवोंके गुणस्थानका निरूपण करनेकेलिये सूत्र कहते हैं ---

अभव्यसिद्ध जीव एकेन्द्रियसे लेकर संज्ञी मिथ्यादृष्टि गुणस्थानतक होते हैं ॥१४३॥

एतदपि सुगमम् ।

सम्मत्ताणुवादेण अत्थि सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी मिच्छाइट्ठी चेदि ॥१४४॥

आम्रवनान्तःस्थनिम्बानामाम्रवनव्यपदेशवन्मिथ्यात्वादीनां सम्यक्त्वव्यपदेशो न्याय्यः । सुगममन्यत् । उक्तं च ---

छपंच-णव-विहाणं अत्थाणं जिनवरोवइट्ठाणं ।

आणाए अहिगमेण व सदहणं होइ सम्मतं १ (प्रा. पं. १,१५९। गाथेयं पूर्वमपि ९६ गाथाङ्केन

आगता । तहियाणं तु भावाणं सब्भावे उवएसणं । भावेणं सदहंतस्स सम्मतं तं वियाहियं ॥

उत्त. २८.१५.)^{२१२}

खीणे दंसण-मोहे जं सदहणं सुणिम्मलं होई ।

तं खाइय-सम्मत्तं णिच्चं कम्म-क्खवण-हेऊ २ (प्रा. पं. १,१६०। गो. जी. ६४६.)

॥२१३॥ वयणेहि वि हेऊहि वि इंदिय-भय-आणएहि रुवेहि ।

वीहच्छ-दुगुंछाहि ण सो ते-लोककेण चालेज्ज ३ (प्रा. पं. १,१६१। गो. जी. ६४७.)^{२१४}

इस सूत्रका अर्थ भी सुगम है।

अब सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे जीवोंके अस्तित्वके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं ॥१४४॥

जिस प्रकार आम्रवनके भीतर रहनेवाले नीमके वृक्षोंको आम्रवन यह संज्ञा प्राप्त हो जाती है, उसी प्रकार मिथ्यात्व आदिको सम्यक्त्व यह संज्ञा देना उचित ही है। शेष कथन सुगम है। कहा भी है ---

जिनेन्द्रदेवके द्वारा उपदिष्ट छह द्रव्य, पांच अस्तिकाय और नव पदार्थोंका आज्ञा अथवा अधिगमसे श्रद्धान करनेको सम्यक्त्व कहते हैं ॥२१२॥

दर्शनमोहनीय कर्मके सर्वथा क्षय हो जाने पर जो निर्मल श्रद्धान होता है वह क्षायिक सम्यक्त्व है। जो नित्य है कर्मोंके क्षणका कारण है ॥२१३॥

श्रद्धानको भ्रष्ट करनेवाले वचन या हेतुओंसे अथवा इन्द्रियोंको भय उत्पन्न करनेवाले

दंसणमोहुदयादो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं ।

चल-मलिनमगाढं तं वेदग-सम्मत्तमिह मुणसु १ (प्रा. पं. १,१६६. पाठभेदः । गो. जी. ६४९. नानात्मीयविशेषेषु चलतीति चलं स्मृतं । लसत्कल्लोलमालासु जलमेकमवस्थितं ।। स्वकारितेऽर्हच्चैत्यादौ देवोऽयं मेऽन्यकारिते । अन्यस्यायमिति भ्राम्यन् मोहाच्छब्दोऽपि चेष्टते ।। तदप्यलब्धमाहात्मं यकात् सम्यक्त्वकर्मणः । मलिनं मलसंगेन शुद्धं स्वर्णमिवोद्भवेत् ।। स्थान एव स्थितं कंममगाढमिति कीर्त्यते । वृद्धयष्टिरिवात्यक्तस्थाना करतले स्थिता ।। समेऽप्यनन्तशक्तित्वे सर्वेषामर्हतामयं । देवोऽस्मै प्रभुरेषोऽस्मा इत्यास्था सुदृशामिपि ।। गो. जी. २५ जी. प्र. टी. उद्धृता.) ॥२१५॥

दंसणमोहुवसमदो उप्पज्जइ जं पयत्थ-सद्दहणं ।

उवसम-सम्मत्तमिणं पसण्ण-मल-पंक-तोय-समं २ (गो. जी. ६५०.) ॥२१६॥

सम्यग्दर्शनस्य सामान्यस्य क्षायिकसम्यग्दर्शनस्य च गुणनिरूपणार्थमाह ---

सम्माइद्दी खइयसम्माइद्दी असंजदसम्माइद्दि-प्पहुडि जाव अजोगिकेव्रलि ति
३ (सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि अयोगकेव्रत्यन्तानि सन्ति । स.
त्ति. १.८.)^{१४५}

किं तत्सम्यक्त्वगतसामान्यमिति चेत्, त्रिष्वपि सम्यग्दर्शनेषु यः
साधारणोऽशस्तत्सामान्यम् । क्षायिकक्षायोपशमिकौपशमिकेषु परस्परतो भिन्नेषु किं सादृश्यमिति --

-

आकारोंसे या बीभत्स अर्थात् निन्दित पदार्थोंके देखनेसे उत्पन्न हुई ग्लानिसे, किंबहुना तीन
लोकसे भी वह क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं होता है ॥२१४॥

सम्यक्त्वमोहनीय प्रकृतिके उदयसे पदार्थोंका जो चल, मलिन और अगाढरूप श्रधदान
होता है उसको वेदक सम्यग्दर्शन कहते हैं ऐसा हे शिष्य तू समझ ॥२१५॥

दर्शनमोहनीयके उपशमसे कीचडके नीचे बैठे जानेसे निर्मल जलके समान पदार्थोंका, जो
निर्मल श्रधदान होता है वह उपशमसम्यग्दर्शन है ॥२१६॥

अब सामान्य सम्यग्दर्शन और क्षायिकसम्यग्दर्शनके गुणस्थानोंके निरूपण करनेके लिये
सूत्र कहते हैं---

सामान्यसे सम्यग्दृष्टि और विशेषकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंयतसम्यग्दृष्टि
गुणस्थानसे लेकर आयोगिकेव्रली गुणस्थानतक होते हैं ॥१४५॥

शंका --- सम्यक्त्वमें रहनेवाला वह सामान्य क्या वस्तु है?

समाधान --- तीनों ही सम्यग्दर्शनोंमें जो साधारण धर्म है वह सामान्य शब्दसे यहां पर
विवक्षित है ।

शंका --- क्षायिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक सम्यग्दर्शनोंके परस्पर भिन्न भिन्न

चेन्न, तत्र यथार्थश्रद्धानं प्रति साम्योपलम्भात् । क्षयक्षयोपशमोपशमविशिष्टानां यथार्थश्रद्धानानां कथं समानतेति चेद्भवतु विशेषणानां भेदो न विशेष्यस्य यथार्थश्रद्धानस्य । सुगममन्यत् ।

वेदकसम्यग्दर्शनगुणसंख्याप्रतिपादनार्थमाह ---

वेदगसम्माइड्डी असंजदसम्माइड्डी-प्पहुडि जाव अप्पमत्त- संजदा ति १
(क्षायोपशमिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि अप्रमत्तान्तानि । स. सि. १.८.) ॥१४६॥

उपरितनगुणेषु किमिति वेदकसम्यक्त्वं नास्तीति चेन्न, अगाढसमलश्रद्धानेन सह क्षपकोपशमकश्रेण्यारोहणानुपपत्तेः । वेदकसम्यक्त्वादौपशमिकसम्यक्त्वस्य कथमाधिक्यतेति चेन्न, दर्शनमोहोदयजनितशैथिल्यादेस्तत्रासत्त्वतस्तदाधिक्योपलम्भात् ।

होने पर सदृशता क्या वस्तु हो सकती है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, उन तीनों सम्यग्दर्शनोंमें यथार्थ श्रद्धानके प्रति समानता पाई जाती है ।

शंका --- क्षय, क्षयोपशम और उपशम विशेषणसे युक्त यथार्थ श्रद्धानोंमें समानता कैसे हो सकती है?

समाधान --- विशेषणोंमें भेद भले ही रहा आवे, परंतु इससे यथार्थ श्रद्धारूप विशेष्यमें भेद नहीं पडता है ।

शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

अब वेदकसम्यग्दर्शनके गुणस्थानोंकी संख्याके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं ---

वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थानतक होते हैं

॥१४६॥

शंका --- ऊपरके आठवें आदि गुणस्थानोंमें वेदकसम्यग्दर्शन क्यों नहीं होता है?

समाधान --- नहीं होता, क्योंकि, अगाढ आदि मलसहित श्रद्धानके साथ क्षपक और उपशम श्रेणीका चढना नहीं बनता है ।

शंका --- वेदकसम्यग्दर्शनसे औपशमिक सम्यग्दर्शनकी अधिकता अर्थात् विशेषता कैसे संभव है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, दर्शनमोहनीयके उदयसे उत्पन्न हुई शिथिलता आदि औपशमिक सम्यग्दर्शनमें नहीं पाई जाती है, इसलिये वेदकसम्यग्दर्शनसे औपशमिकसम्यग्दर्शनमें विशेषता सिद्ध हो जाती है।

कथमस्य वेदकसम्यग्दर्शनव्यपदेश इति चेदुच्यते। दर्शनमोहवेदको वेदकः, तस्य सम्यग्दर्शनं वेदकसम्यग्दर्शनम् । कथं दर्शनमोहोदयवतां सम्यग्दर्शनस्य सम्भव इति चेन्न, दर्शनमोहनीयस्य देशघातिन उदये सत्यपि जीवस्वभावश्रद्धानस्येकदेशोत्पत्त्य-१ (मु. देशे सत्य।) विरोधात्। देशघातिनो दर्शनमोहनीयस्य कथं सम्यग्दर्शनव्यपदेश इति चेन्न, सम्यग्दर्शनसाहचर्यात्तस्य तद्व्यपदेशाविरोधात् ।

औपशमिकसम्यग्दर्शनगुणस्थानप्रतिपादनार्थमाह ---

उवसमसम्माइड्डी असंजदसम्माइड्ढि-प्पहुडि जाव उवसंत-कसाय-वीयराय-छदुमत्था त्ति
² (औपशमिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि उपशान्तकषायान्तानि । स. सि. १.८.)
॥१४७॥

सुगममेतत् ।

सासणसम्माइड्डी एकम्मि चेय सासणसम्माइड्ढि- द्वाणे ॥१४८॥

शंका --- क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शनको वेदक सम्यग्दर्शन यह संज्ञा कैसे प्राप्त होती है?

समाधान --- दर्शनमोहनीय कर्मके उदयका वेदन करनेवाले जीवको वेदक कहते हैं। उसके जो सम्यग्दर्शन होता है उसे वेदकसम्यग्दर्शन कहते हैं।

शंका --- जिनके दर्शनमोहनीय कर्मका उदय विद्यमान है उनके सम्यग्दर्शन कैसे पाया जा सकता है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, दर्शनमोहनीयकी देशघाति प्रकृतिके उदय रहने पर भी जीवके स्वभावरूप श्रद्धानके एकदेश की उत्पत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

शंका --- दर्शनमोहनीयकी देशघाति प्रकृतिको सम्यग्दर्शन यह संज्ञा कैसे दी गई?

समाधान --- नहीं क्योंकि, सम्यग्दर्शनके साथ सहचर संबन्ध होनेके कारण उसको सम्यग्दर्शन इस संज्ञाके देनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

अब औपशमिक सम्यग्दर्शनके गुणस्थानोंके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं ---

उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर उपशान्त-कषाय-वीतराग-छन्नस्थ गुणस्थानतक होते हैं ॥१४७॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है।

अब सासादनसम्यक्त्व आदि संबन्धी गुणस्थानोंके प्रतिपादन करनेके लिये तीन सूत्र कहते हैं ---

सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एक सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें ही होते हैं ॥१४८॥

सम्मामिच्छाङ्गी एक्कम्मि चेय सम्मामिच्छाङ्गिद्विद्वाने ॥१४९॥

मिच्छाङ्गि एङ्गिदिय-प्पहुडि जाव सण्णि-मिच्छाङ्गिद्वि (सासादनसम्यग्दृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिर्मिथ्यादृष्टिश्च स्वे स्वे स्थाने । स. सि. १.८) ति ॥१५०॥

सुगमत्वात्त्रिष्वप्येतेषु सूत्रेषु न वक्तव्यमस्ति । वृत्तं २ (अ. प्रतौ 'वृत्तं' इत्यत आरम्य गाथाचतुष्कमिदं नास्ति । मु. प्रतावपि नास्ति ।) च ---

ण य मिच्छत्तं पत्तो सम्मत्तादो य जो दु परिवदिदो ।

सो सासणो ति णेयो सादिय मध पारिणामिओ भावो ॥२१७॥

सद्दहणासद्दहणं जस्स य जीवस्स होइ तच्चेसु ।

विरदाविरदेण समो सम्माम्मिच्छो ति णादब्बो ॥२१८॥

ण वि जायइ ण वि मरइ ण वि सुध्दो ण वि य कम्म-उम्मुको ।

चउगइमज्जत्थे वुण रागाइ-समणियो जीवो ॥२१९॥

तिण्णि जणा एक्केक्कं दोदो णेच्छंति ते तिवग्गा य ।

एक्को तिण्णि ण इच्छइ सत्त वि पावंति मिच्छत्तं ॥२२०॥

सम्यग्दर्शनादेशप्रतिपादनार्थमाह ---

णेरइया अत्थि मिच्छाइड्ढी सासण-सम्माइड्ढी सम्मामिच्छाइड्ढी असंजदसम्माइड्ढि
त्ति ॥१५१॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ही होते हैं ॥१४९॥

मिथ्यादृष्टि जीव एकेन्द्रियसे लेकर संज्ञी मिथ्यादृष्टितक होते हैं ॥१५०॥

इन तीनों सूत्रोंका अर्थ सुगम है, अतएव इनके विषयमें अधिक कुछ भी नहीं कहना है।
कहा भी है ---

जो सम्यक्त्वसे गिरकर मिथ्यात्वको नहीं प्राप्त हुआ है, उसे सासादन सम्यग्दृष्टि जानना
चाहिए। यह गुणस्थान सादि और पारिणामिक भाववाला है ॥१५७॥

जिस जीवके जीवादिक तत्त्वोंमें श्रद्धान और अश्रद्धान रूप भाव है, उसे विरताविरतके
समान सम्यग्मिथ्यादृष्टि जानना चाहिए ॥१५८॥

वह न जन्म लेता है, न मरता है, न शुद्ध होता है और न कर्मसे उन्मुक्त होता है। किन्तु
वह रागादिसे युक्त होकर चारों गतियोंमें पाया जाता है ॥१५९॥

ऐसे तीन जन जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र इन तीनोंमेंसे किसी एक एक को
(मोक्षमार्ग) स्वीकार नहीं करते, दूसरे ऐसे तीन जन जो इन तीनोंमेंसे दो दो को (मोक्षमार्ग)
स्वीकार नहीं करते तथा कोई ऐसा भी जीव हो जो तीनोंको (मोक्षमार्ग) स्वीकार नहीं करता ये
सातों जीव मिथ्यात्वी है ॥१६०॥

अब सम्यग्दर्शनका मार्गणाओंमें निरूपण करनेकेलिये सूत्र कहते हैं---

नारकी जीव मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत

अथ स्याद्गतिनिरूपणायामस्यां गतौ इयन्ति गुणस्थानानि सन्ति, इयन्ति न सन्तीति
निरूपितत्वान्न वक्तव्यमिदं सूत्रम्, सम्यक्त्वनिरूपणाय गुणस्थाननिरूपणाव-सराभावाच्चेति न,

विस्मृतपूर्वोक्तार्थस्य प्रतिपाद्यस्य तमर्थ संस्मार्य तत्र तत्र गतौ
सम्यग्दर्शनभेदप्रतिपादनप्रवणत्वात् । सुगममन्यत् ।

एवं जाव सत्तसु पुढवीसु ॥१५२॥

कथं सामान्यवद्विशेषः स्यादिति चेन्न, विशेषव्यतिरिक्तसामान्यस्यासत्त्वात् ।
नाव्यतिरेकोऽपि द्वयोरभावासञ्जनात् १ (मु. भावासञ्जननात् ।) नोभयपक्षोऽपि
पक्षद्वयोक्तदोषासञ्जनात् २ (मु. दोषासंजननात्) । निःस्वभावप्रसङ्गात् । न च
सामान्यविशेषयोरभाव एव प्राप्तजात्यन्तरत्वेनोपलम्भात् । ततः सूक्तमेतदिति स्थितम् ।

सम्यग्दृष्टि होते हैं ॥१५१॥

शका --- गतिमार्गणाकार निरूपण करते समय 'इस गतिमें इतने गुणस्थान होते हैं और
इतने नहीं होते हैं' इस बातका निरूपण कर ही आये हैं, इसलिये इस सूत्रके कथनकी कोई
आवश्यकता नहीं है । तथा सम्यग्दर्शनमार्गणाका निरूपण करते समय गुणस्थानोंके निरूपणका
अवसर नहीं है, इसलिये भी इस सूत्रके कथनकी आवश्यकता नहीं है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, जो शिष्य पूर्वोक्त अर्थको भूल गया है उसके लिये, उस
अर्थका पुनः स्मरण कराके उन उन गतियोंमें सम्यग्दर्शनके भेदोंके प्रतिपादन करनेमें यह सूत्र
समर्थ है, इसलिये इस सूत्रका अवतार हुआ है । शेष कथन सुगम है ।।

अब सातों पृथिवियोंमें सम्यग्दर्शनके निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं ---

इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें प्रारम्भके चार गुणस्थान होते हैं ॥१५२॥

शंका --- सामान्यके समान विशेष कैसे हो सकता है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, विशेषको छोड़कर सामान्य नहीं पाया जाता है, इसलिये
सामान्य कथनसे विशेषका भी बोध हो जाता है । इससे सामान्य और विशेषमें सर्वथा अभेद भी
नहीं है, क्योंकि, दोनोंमें सर्वथा अभेद मान लेने पर दोनोंका अभाव हो जायगा । इसी प्रकार इन
दोनोंमें सर्वथा उभयपक्ष अर्थात् सर्वथा भेद और सर्वथा अभेद भी नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर
दोनों पक्षमें दिये गये दोष प्राप्त हो जायेगे । सामान्य और विशेष सर्वथा अनुभयरूप भी नहीं हैं,
क्योंकि, ऐसा मान लेनेपर वस्तुको निःस्वभावताका प्रसंग आ जायगा । तथा सामान्य और

विशेषका अभाव भी नहीं है, क्योंकि, जात्यन्तर अवस्थाको प्राप्त होने रूपसे उन दोनोंकी उपलब्धि होती है। इसलिये पूर्वमें जो कथन किया है वह ठीक है, यह बात निश्चित हो जाती है।

सम्यग्दर्शनविशेषप्रतिपादनार्थमाह---

णेरइया असंजदसम्माइड्ढि-ड्ढाणे अत्थि खइयसम्माइड्ढी वेदगसम्माइड्ढी उवसमसम्माइड्ढी चेदि ॥१५३॥

सुगममेतत् ।

एवं पढ्माए पुढ्वीए णेरइआ ॥१५४॥

एतदपि सुबोध्यम् ।

विद्यादि जाव सत्तमाए पुढ्वीए णेरइया असंजदसम्माइड्ढि-ड्ढाणे खइयसम्माइड्ढि णत्थि, अवसेसा अत्थि ॥१५५॥

सप्तप्रकृतीषु क्षीणासु किमिति तत्र नोत्पद्यन्त इति चेत्स्वाभाव्यात् । तत्रस्थाः सन्तः किमिति सप्तप्रकृतीर्न क्षपयन्तीति चेन्न, तत्र जिनानामभावात् ।

अब सम्यग्दर्शनका मार्गणाओंमें प्रतिपादन करनेकेलिये सूत्र कहत हैं ---

नारकी जीव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥१५३॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

अब प्रथम पृथिवीमें सम्यग्दर्शन बतलानेकेलिये सूत्र कहते हैं --

इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें नारकी जीव होते हैं ॥१५४॥

इस सूत्रका अर्थ भी सुबोध है ।

अब शेष पृथिवियोंमें सम्यग्दर्शनकेनिरूपण करनेकेलिये सूत्र कहते हैं ---

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवी पृथिवीतक नारकी जीव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं । शेषकेदो सम्यग्दर्शनोंसे युक्त होते हैं ॥१५५॥

शंका --- सम्यक्त्वकी प्रतिबन्धक सात प्रकृतियोंके क्षय हो जानेपर क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव द्वितीयादि पृथिवियोंमें क्यों उत्पन्न नहीं होते हैं?

समाधान--- ऐसा स्वभाव ही है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव द्वितीयादि पृथिवियोंमें नहीं उत्पन्न होते है ।

शंका --- द्वितीयादि पृथिवियोंमें रहनेवाले नारकी सम्यक्त्वकी प्रतिबन्धक सात प्रकृतियोंका क्षय क्यों नहीं करते हैं?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, वहांपर जिनेन्द्रदेवका अभाव है ।

तिर्यगादेशप्रतिपादनार्थमाह ---

तिरिक्खा अत्थि मिच्छाइड्ढी सासणसम्मइड्ढि सम्मामिच्छाइड्ढि असंजदसम्माइड्ढि संजदा-
संजदा ति ॥१५६॥

संन्यस्तशरीरत्वात्त्यक्ताहाराणां तिरश्चां किमिति संयमो न भवेदिति चेन्न, अन्तरङ्गायाः
सकलनिवृत्तेरभावात् । किमिति तदभावश्चेज्जातिविशेषात् ।

एवं जाव सव्व-दीव-समुद्देशु ॥१५७॥

स्वयम्प्रभादारान्मानुषोत्तरात्परतो भोगभूमिसमानत्वान्न तत्र देशव्रतितः सन्ति तत एतत्सूत्रं
न घटत इति न, वैरसम्बन्धेन देवैदनिवैर्वोत्क्षिप्य क्षिप्तानां देशव्रतीनां सर्वत्र १ (क्षिप्तानां सर्वत्र ।)
सत्त्वाविरोधात् ।

सम्यग्दर्शनविशेषप्रतिपादनार्थमाह ---

तिरिक्खा असंजदसम्माइड्ढि-ट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइड्ढि वेदग-सम्माइड्ढि
उवसमसम्माइड्ढि ॥१५६॥

अब तिर्यच गतिमें विशेष प्रतिपादन करनेकेलिये सूत्र कहते हैं ---

तिर्यच मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और
संयतासंयत होते हैं ॥१५६॥

शंका --- शरीरसे संन्यास ग्रहण कर लेनेके कारण जिन्होंने आहारका त्याग कर दिया है
ऐसे तिर्यचोंके संयम क्यों नहीं होता है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, उनके अन्तरंग सकल-निवृत्तिका अभाव है ।

शंका --- उनके अन्तरंग सकल-निवृत्तिका अभाव क्यों है?

समाधान --- जिस जातिमें वे उत्पन्न हुए हैं उसमें संयम नहीं होता यह नियम है, इसलिये उनके संयम नहीं पाया जाता है।

इसी प्रकार संपूर्ण व्दीप-समुद्रवर्ती तिर्यचोंमें समझना चाहिये ॥१५७॥

शंका --- स्वयंभूरमण व्दीपवर्ती स्वयंप्रभ पर्वतके इस ओर और मानुषोत्तर पर्वतके उस ओर (असंख्यात व्दीप-समुद्रोंमें) भोगभूमिके समान रचना होनेसे वहांपर देशव्रती नहीं पाये जाते हैं, इसलिये यह सूत्र घटित नहीं होता है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, वैरके संबन्धसे देवों अथवा दानवोंके द्वारा उठाकर डाले गये देशव्रती तिर्यचोंका सब जगह सद्भाव होनेमें कोई विरोध नहीं आता है, इसलिये वहांपर तिर्यचोंके पांचो गुणस्थान बन जाते हैं।

अब तिर्यचोंमें सम्यग्दर्शनके भेदोंका प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं ---

तिर्यच असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशम-सम्यग्दृष्टि होते हैं ॥१५८॥

सुगमम् ।

तिरिक्खा संजदासंजद-द्वाणे खइयसम्माइड्ढि णत्थि अवसेसा अत्थि ॥१५९॥

तिर्यक्षु क्षायिकसम्यग्दृष्टयः संयतासंयताः किमिति न सन्तीति चेन्न, क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां भोगभूमिमन्तरेणोत्पत्तेरभावात् । न च भोगभूमावुत्पन्नानामणुव्रतोपादानं सम्भवति तत्र तद्विरोधात् । सुगममन्यत् ।

एवं पंचिंदिय -तिरिक्खा पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्ता ॥१६०॥

एतदपि सुबोध्यम् ।

पंचिंदिय-तिरिक्ख-जोणिणीसु असंजदसम्माइड्ढि-संजदासंजद-द्वाणे खइयसम्माइड्ढि णत्थि, अवसेसा अत्थि ॥१६१॥

तत्र क्षायिकसम्यग्दृष्टिनामुत्पत्तेरभावात्तत्र दर्शनमोहनीयस्य क्षपणाभावाच्च ।

मनुष्यादेशप्रतिपादनार्थमाह ---

यह सूत्र सुगम है।

तिर्यच संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं। शेष दो सम्यग्दर्शनोंसे युक्त होते हैं ॥१५९॥

शंका --- तिर्यचोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संयतासंयत क्यों नहीं होते हैं?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, तिर्यचोंमें यदि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होते हैं तो वे भोगभूमिमें ही उत्पन्न होते हैं, दूसरी जगह नहीं। परंतु भोगभूमिमें उत्पन्न हुए जीवोंके अणुव्रतकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है, क्योंकि, वहांपर अणुव्रतके होनेमें विरोध आता है। शेष कथन सुगम है।

इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यच और पंचेन्द्रिय-तिर्यच-पर्याप्त होते हैं ॥१६०॥

इस सूत्रका अर्थ भी सुबोध है।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं। शेष दो सम्यग्दर्शनोंसे युक्त होते हैं ॥१६१॥

क्योंकि, उनमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव मरकर उत्पन्न नहीं होते हैं और जो वहां उत्पन्न होते हैं उनके दर्शनमोहनीयका क्षय नहीं होता है, अतः उनमें क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं पाया जाता है।

मणुसा १ (मु. मणुस्सा।) अत्थि मिच्छाङ्घ्रि सासणसम्माङ्घ्रि सम्मामिच्छाङ्घ्रि असंजदसम्माङ्घ्रि संजदासंजदा संजदा त्ति ॥१६२॥

सुगममेतत् ।

एवमड्ढाङ्ज्ज-दीव-समुद्देशु ॥१६३॥

वैरसम्बन्धेन क्षिप्तानां संयतानां संयतासंयतानां च सर्व्वदीपसमुद्देशु संभवो भवत्विति चेन्न मानुषोत्तरात्परतो देव २ (मु. देवस्य।) प्रयोगतोऽपि मानुषाणां ३ (मु. मनुष्याणां।) गमनाभावात् । न हि स्वतोऽसमर्थमन्यतः समर्थ ४ (मु. समर्थोऽन्यतः समर्थो ।) भवति, अतिप्रसङ्गात् । अथ स्यादर्धतृतीयशब्देन किमु व्दीपो विशेष्यते ५ (मु. विशिष्यते.) उत समुद्र उत व्दावपीति ? नान्त्योपान्त्यविकल्पौ मानुषोत्तरात्परतोऽपि मनुष्याणामस्तित्वप्रसङ्गात् । अस्तु

चेन्न, व्दीपत्रये, मनुष्याणां सत्त्वप्रसङ्गात् । नैतदपि ६ (न तदपि।), सूत्रविरोधात् ।
नादिविकल्पोऽपि, समुद्राणां संख्यानियमाभावतः सर्वसमुद्रेषु तत्सत्त्वप्रसङ्गादिति ।

अब मनुष्योंमें विशेष प्रतिपादन करनेकेलिये सूत्र कहते हैं ---

मनुष्य मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि,
संयतासंयत और संयत होते हैं ॥१६२॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ---

इसी प्रकार ढाई व्दीप और दो समुद्रोंमें जानना चाहिये ॥१६३॥

शंका --- वैरके संबन्धसे डाले गये संयत और संयतासंयत आदि मनुष्योंका संपूर्ण व्दीप
और समुद्रोंमे सद्भाव रहा आवे, ऐसा मान लेनेमें क्या हानि है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, मानुषोत्तर पर्वतके उस तरफ देवोंकी प्रेरणासे भी मनुष्योंका
गमन नहीं हो सकता है। ऐसा न्याय भी है कि जो स्वतः असमर्थ होता है वह दूसरोंके संबन्धसे भी
समर्थ नहीं हो सकता है। यदि ऐसा न होवे तो अतिप्रसंग दोष आ जायगा। अतः मानुषोत्तरके उस
ओर मनुष्य नहीं पाये जाते हैं।

शंका --- अर्धतृतीय शब्द व्दीपका विशेषण है या समुद्रका अथवा दोनोंका? इनमेंसे
अन्तकेदो विकल्प तो बराबर नहीं है, क्योंकि, वैसा मान लेने पर मानुषोत्तर पर्वतके उस तरफ भी
मनुष्योंके अस्तित्वका प्रसंग आ जायगा। यदि यह कहा जावे कि अच्छी बात है, मानुषोत्तरके परे
भी मनुष्य पाये जावें, सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, इस प्रकार तो तीन व्दीपोंमें मनुष्योंके
सद्भावका प्रसंग आता है। और वैसा है नहीं, क्योंकि, सूत्रसे विरोध ---

अत्र प्रतिविधीयते। नान्त्योपान्त्यविकल्पोक्तदोषाः समाढौकन्ते, तयोरनभ्युपगमात्। न
प्रथमविकल्पोक्तदोषोऽपि, व्दीपेष्वर्धतृतीयसंख्येषु मनुष्याणामस्तित्वनियमे सति शेषव्दीपेषु
मनुष्याभावसिद्धिवन्मानुषोत्तरत्वं प्रत्यविशेषतः शेषसमुद्रेषु तदभावसिद्धेः। नाशेषसमुद्राणां
मानुषोत्तरत्वमसिद्धमारात्तन्व्दीपभागसप्यन्यथा मानुषोत्तरत्वानुपपत्तेः। ततः सामर्थ्याद् व्दयोः
समुद्रयोः सन्तीत्यनुक्तमप्यवगम्यते।

सम्यग्दर्शनविशेषप्रतिपादनार्थमाह ---

मणुसा असंजदसम्माइद्धि-संजदासंजद-संजद-द्वाणे अत्थि खइयसम्माइद्धी१ (मु. अत्थि सम्माइद्धी ।) वेदयसम्माइद्धि उवसमसम्माइद्धी ॥१६४॥

सुगमत्वान्नात्र वक्तव्यमस्ति ।

एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु ॥१६५॥

एतदपि सुगमम् ।

आता है। इसी प्रकार पहला विकल्प भी नहीं बन सकता है, क्योंकि, इस प्रकार व्दीपोंकी संख्याका नियम होने पर भी समुद्रोंकी संख्याका कोई नियम नहीं बनता है, इसलिये समस्त समुद्रोंमें मनुष्योंके सद्भावका प्रसंग प्राप्त होता है?

समाधान --- दूसरे और तीसरे विकल्पमें दिये गये दोष तो प्राप्त ही नहीं होते हैं, क्योंकि, परमागममें वैसा माना ही नहीं गया है। इसी प्रकार प्रथम विकल्पमें दिया गया दोष भी प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि, ढाई व्दीपमें मनुष्योंके अस्तित्वका नियम हो जानेपर शेषके व्दीपोंमें जिस प्रकार मनुष्योंके अभावकी सिद्धि हो जाती है, उसी प्रकार शेष समुद्रोंमें भी मनुष्योंका अभाव सिद्ध हो जाता है, क्योंकि, ढाई व्दीपोंको छोडकर शेष व्दीपोंकी तरह दो समुद्रोंके अतिरिक्त शेष समुद्र भी मानुषोत्तरसे परे हैं, अतः शेष व्दीपोंकी तरह शेष समुद्रोंके भी मानुषोत्तरसे परे होनेमें कोई विशेषता नहीं है। इस प्रकार शेष व्दीपोंके लिये जो नियम लागू है वही शेष समुद्रोंके लिये भी हो जाता है। इसलिये शेष समुद्रोंमें मनुष्योंका अभाव है यह बात निश्चित हो जाती है। शेषके संपूर्ण समुद्रोंका मानुषोत्तर पर्वतके उस तरफ होना असिद्ध भी नहीं है, अन्यथा समीपवर्ती व्दीपभागके भी मानुषोत्तर पर्वतके उस तरफ होना सिद्ध नहीं होगा। इसलिये सामर्थ्यसे दो समुद्रोंमें मनुष्य पाये जाते हैं, यह बात विना कहे ही जानी जाती है।

अब मनुष्योंमें सम्यग्दर्शनके भेदोंका प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं ---

मनुष्य असंतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत गुणस्थानोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥१६४॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम होनेसे यहां पर विशेष कहने योग्य नहीं है।

इस प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें भी जानना चाहिये ॥१६५॥

इस सूत्रका अर्थ भी सुगम है।

देवादेशप्रतिपादनार्थमाह----

देवा अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि ति ॥१६६॥

एवं जाव उवरिम-गेवेज्ज-विमाण-वासिय-देवा ति ॥१६७॥

देवा असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदय-सम्माइट्ठी
उवसमसम्माइट्ठि ति ॥१६८॥

सुगमत्वात्सूत्रत्रितये न किञ्चिद्वक्तव्यमस्ति ।

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोइसिय देवा देवीओ च सोधम्मीसाण-कप्पवासिय-देवीओ च
असंजदासम्माइट्ठि-ट्ठाणे खइयसम्माइट्ठी णत्थि अवसेसा अत्थि अवसेसियाओ अत्थि ॥१६९॥

किमिति क्षायिकसम्यग्दृष्टयस्तत्र न सन्तीति चेन्न, देवेषु
दर्शनमोहक्षपणाभावात्क्षपितदर्शनमोहकर्मणामपि प्राणिनां भवनवास्यादिष्वधमदेवेषु सर्वदेवीषु
चोत्पत्तरेभावाच्च । शेषसम्यक्त्वदयस्य तत्र कथं सम्भव इति चेन्न, तत्रोत्पन्नजीवानां
पश्चात्तत्पर्यायपरिणतेः । सत्त्वात् ।

अब देवोंमें विशेष प्रतिपादन करनेकेलिये सूत्र कहते हैं ---

देव मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि
होते हैं ॥१६६॥

इसी प्रकार उपरिम उपरिम ग्रैवेयक तककेदेव जानना चाहिये ॥१६७॥

देव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशम
सम्यग्दृष्टि होते हैं ॥१६८॥

पूर्वोक्त तीनों सूत्रोंका अर्थ सुगम होनेसे इनकेविषयमें अधिक कुछ भी नहीं कहना है।

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देव तथा उनकी देवियां और सौधर्म तथा
ईशानकल्पवासी देवियां असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि नहीं है। शेषके दो
सम्यग्दर्शनोंसे युक्त होते हैं और होती हैं ॥१६९॥

शंका --- क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उक्त देवों और देवियोंमें क्यों नहीं होते हैं?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, एक तो वहांपर दर्शनमोहनीयका क्षय नहीं होता है। दूसरे जिन जीवोंने पूर्व पर्यायमें दर्शनमोहनीयका क्षय कर दिया है उनकी भवनवासी आदि अधम देवोंमें और सभी देवियोंमें उत्पत्ति नहीं होती है।

शंका --- शेषकेदो सम्यग्दर्शनोंका उनमें सद्भाव कैसे संभव है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, वहांपर उत्पन्न हुए जीवोंके अनन्तर सम्यग्दर्शनरूप पर्याय हो जाती है, इसलिये शेषकेदो सम्यग्दर्शनोंका वहांपर सद्भाव पाया जाता है।

सोधम्मीसाण-प्पहुडि-जाव उवरिम-उवरिम-गेवज्ज-विमाण-वासिय-देवा असंजदसम्माइड्ढि-
द्वाणे अत्थि खइयसम्माइड्ढी वेदग-सम्माइड्ढी उवसमम्माइड्ढी ॥१७०॥

त्रिविधेन सम्यक्त्वेन सह तत्रोत्पत्तेर्दर्शनात् । तत्रोत्पद्य द्विविधसम्यग्दर्शनोपादानात्तत्र तेषां
सत्त्वं सुघटमिति ।

शेषदेवानां सम्यग्दर्शनभेदप्रतिपादनार्थमाह ---

अणुदिस-अणुत्तर-विजय-वइजयंत-जयंतावराजिद-सवड्ढ-सिद्धिविमाण-वासिय-देवा
असंजदसम्माइड्ढि-द्वाणे-अत्थि खइय-सम्माइड्ढी वेदगसम्माइड्ढी उवसमसम्माइड्ढी ॥१७१॥

कथंम तत्रोपशमसम्यक्त्वस्य सत्त्वमिति चेत्कथं च तत्र तस्यासत्त्वम्? तत्रोत्पन्नेभ्यः
क्षायिकक्षायोपशमिकसम्यग्दर्शनेभ्यस्तदनुत्पत्तेः । नापि मिथ्यादृष्टय उपात्तौपशमिकसम्यग्दर्शनाः
सन्तस्तत्रोत्पद्यन्ते, तेषां तेन सह मरणाभावात् । न,

सौधर्म और ऐशान कल्पसे लेकर उपरिम उपरिम ग्रैवेयक तकके देव असंतयसम्यग्दृष्टि
गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥१७०॥

उक्त देवोंमें तीनों ही प्रकारके सम्यग्दर्शनके साथ जीवोंकी उत्पत्ति देखी जाती है अथवा,
वहांपर उत्पन्न होनेके पश्चात् वेदक और औपशमिक इन दो सम्यग्दर्शनोंका ग्रहण होता है,
इसलिये उक्त देवोंमें तीनों सम्यग्दर्शनोंका सद्भाव बन जाता है।

अब शेष देवोंमें सम्यग्दर्शनके भेद बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं ---

नव अनुदिशोंमें और विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित तथा सर्वार्थसिद्धि इन पांच अनुत्तरोंमें रहनेवाले देव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥१७१॥

शंका --- यहांपर उपशम सम्यग्दर्शनका सद्भाव कैसे पाया जाता है?

प्रतिशंका --- यहांपर उसका सद्भाव कैसे नहीं पाया जा सकता है?

शंका --- वहांपर जो उत्पन्न होते हैं उनके क्षायिक और क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन पाया जाता है, इसलिये उनके उपशम सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है। और मिथ्यादृष्टि जीव उपशम सम्यग्दर्शनको ग्रहण करके वहांपर उत्पन्न नहीं होते हैं, क्योंकि, ऐसे उपशमसम्यग्दृष्टियोंका उपशमसम्यक्त्वके साथ मरण नहीं होता है।

समाधान --- नहीं, क्योंकि, उपशम श्रेणीपर चढनेवाले और चढकर उतरनेवाले जीवोंकी अनुदिश और अनुत्तरोंमें उत्पत्ति होती है, इसलिये वहांपर उपशम सम्यक्त्वके सद्भाव रहनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

^१ (मु. श्रेण्यारुढा ।) उपशमश्रेण्यामारुढानामारुह्यावतीर्णानां च तत्रोत्पत्तितस्तत्र तत्सत्त्वाविरोधात् ।
उपशमश्रेण्यारुढा उपशमसम्यग्दृष्टयो न म्रियन्ते
औपशमिकसम्यग्दर्शनोपलक्षितत्वाच्छेषौपशमिकसम्यग्दृष्टय इवेति चेन्न,
पश्चात्कृतमिथ्यात्वसम्यक्त्वाभ्यामनुपशमितोपशमितचारित्रमोहाभ्यां च तयोर्वैधर्म्यात् ।

सम्यग्दर्शनमुखेन जीवपदार्थमभिधाय समनस्कामनस्कभेदेन
जीवपदार्थप्रतिप्रतिपादनार्थमाह---

सण्णियाणुवादेण अत्थि सण्णी असण्णी ॥१७२॥

सुगममेतत्सूत्रम् २ (अ. प्रतौ 'उक्तंच' इत्यत आरम्भ गाथेयं नास्ति । मु. प्रतावपि ।) उक्तं

च ---

मीमंसदि जो पुवं कज्जमकज्जं च तच्चमिदरं च ।

सिक्खदि णामेणेदि य सो समणो असमणो य विवरीदो ॥२२१॥

संज्ञिनां गुणस्थानाध्वानप्रतिपादनार्थमाह ---

सण्णी मिच्छाइडि-प्पहुडि जाव खीणकसाय-वीयराय-छदुमत्था ति ^३ (संज्ञानुवादेन संज्ञिषु
व्वादश गुणस्थानानि क्षीणकषायान्तानि । स. सि. १.८.) ॥१७३॥

शंका --- उपशम श्रेणीपर आरुढ हुए उपशम सम्यग्दृष्टि जीव नहीं मरते हैं, क्योंकि, वे
उपशम सम्यग्दर्शनसे युक्त होते हैं। जिस प्रकार अन्य औपशमिक सम्यग्दृष्टियोंका मरण नहीं
होता है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, पश्चात्कृत मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी अपेक्षा तथा
अनुपशमित और उपशमित चारित्रमोहनीयकी अपेक्षा साधारण उपशम सम्यग्दृष्टियों और
उपशम श्रेणीपर चढे हुए सम्यग्दृष्टियोंमें वैधर्म्य है।

इस प्रकार सम्यग्दर्शनके द्वारा जीव पदार्थका कथन करके अब समनस्क और अमनस्क
इन दो भेदरूप संज्ञीमार्गणाके द्वारा जीव पदार्थके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं ---

संज्ञीमार्गणाके अनुवादसे संज्ञी और असंज्ञी जीव होते हैं ॥१७२॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है।

जो कार्य करनेसे पूर्व कार्य और अकार्यका, तथा तत्त्व और अतत्त्वका विचार करता है,
दूसरोंके द्वारा दी गई शिक्षाओंको सीखता है और नाम लेनेपर आ जाता है वह समनस्क है और
जो इससे विपरीत है वह अमनस्क है ॥२२१॥

अब संज्ञी जीवोंके गुणस्थानोंमें प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं ---

संज्ञी जीव मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थानतक
होते हैं ॥१७३॥

समनस्कत्वात्सयोगकेवलिनोऽपि १ (मु. सयोगिकेवलिनोऽपि ।) संज्ञिन इति चेन्न, तेषां
क्षीणावरणानां मनोऽवष्टम्भबलेन बाह्यार्थग्रहणाभावतस्तदसत्त्वात् । तहि भवन्तु केवलिनोऽसंज्ञिन
इति चेन्न, साक्षात्कृताशेषपदार्थानामसंज्ञित्वविरोधात् । असंज्ञिनः केवलिनो मनोऽनपेक्ष्य
बाह्यार्थग्रहणादिकलेन्द्रियवदिति चेद्भवत्येवं यदि मनोऽनपेक्ष्य ज्ञानोत्पत्तिमात्रमाश्रित्यासंज्ञि
त्वमुच्येत । किं पुनरसंज्ञित्वस्य निबन्धनमिति२ (मु. माश्रित्यासंज्ञित्वस्य निबन्धनमिति ।) चेत्?
मनसोऽभावाद् बुध्दयतिशयाभावः ततो नानन्तरोक्तदोष इति^६ सुगममन्यत् ३ (मु. सुगममेतत् ।) ।

असण्णी एइंदिय-प्पहुडि जाव असण्णि-पंचिंदिया ति ४ (असंज्जिषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम् । स. सि. १.८.) ॥१७४॥

एतदपि सूत्रं सुगमम् ५ (मु. सुगमं सूत्रम् ।) ।

आहारमुखेन जीवप्रतिपादनार्थमाह ---

आहाराणुवादेण अत्थि आहारा अणाहारा ॥१७५॥

शंका --- मनसहित होनेके कारण सयोगकेवली भी संज्जी होते हैं?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, आवरण कर्मसे रहित उनके मनके अवलम्बनसे बाह्य अर्थका ग्रहण नहीं पाया जाता है, इसलिये उन्हें संज्जी नहीं कह सकते ।

शंका --- तो केवली असंज्जी रहे आवें?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, जिन्होंने समस्त पदार्थोंको साक्षात् कर लिया है उनके असंज्जी होनेमें विरोध आता है ।

शंका --- केवली असंज्जी होते हैं, क्योंकि, वे मनकी अपेक्षाके विना ही विकलेन्द्रिय जीवोंकी तरह बाह्य पदार्थोंको ग्रहण करते हैं?

समाधान --- यदि मनकी अपेक्षा न करके ज्ञानकी उत्पत्तिमात्रका आश्रय करके असंज्जीपना कहा जाता तो ऐसा होता । परंतु ऐसा नहीं है ।

शंका --- तो असंज्जित्वका क्या कारण है?

समाधान --- मनका अभाव होनेसे बुद्धिके अतिशयका अभाव असंज्जित्वका कारण है । इसलिये केवली को पूर्वमें दिया गया दोष सम्भव नहीं है । अन्य कथन सुगम है ।

असंज्जी जीव एकेन्द्रियसे लेकर असंज्जी पंचेन्द्रियपर्यन्त होते हैं ॥१७४॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अब आहारमार्गणाकेद्वारा जीवोंके प्रतिपादन करनेकेलिये सूत्र कहते हैं ---

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारक और अनाहारक जीव होते हैं ॥१७५॥

एतदपि सुगमम् ।

⁹ (मु. आहार ।) आहारिगुणप्रतिपादनार्थमाह ---

आहारा एइंदिय-प्पहुडि जाव सजोगिकेवलि ति २ (आहारानुवादेन आहारकेषु मिथ्यादृष्ट्यादीनि सयोगकेवल्यन्तानि । स. सि. १. ८.)^९ १७६

अत्र कवललेपोष्मनःकर्माहारान् परित्यज्य नोकर्माहारो ग्राह्यः, अन्यथा-
हारकालविरहाभ्यां सह विरोधात् ।

अणाहारा चदुसु द्वाणेषु विग्गहगइ-समावण्णाणं केवलीणं वा समुग्घाद-गदाणं
अजोगिकेवली सिध्दा चेदि ॥१७७॥

एते शरीरप्रायोग्यपुद्गलोपादानरहितत्वादानाहारिण उच्यन्ते ।

इति संत-सुत्त-विवरणं समत्तं ।

यह सूत्र भी सुगम है ।

अब आहारमार्गणामें गुणस्थानोंके प्रतिपादन करनेकेलिये सूत्र कहते हैं ---

आहारक जीव एकेन्द्रियसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थानतक होते हैं ॥१७६॥

यहांपर आहार शब्दसे कवलाहार, लेपाहार, ऊष्माहार, मानसिकाहार और कर्माहारको
छोडकर नोकर्माहारका ही ग्रहण करना चाहिये । अन्यथा आहारकाल और विरहके साथ विरोध
आता है ।

विग्रहगतिको प्राप्त जीवोंके मिथ्यात्व, सासादन और अविरतसम्यग्दृष्टि तथा समुद्धातगत
केवलियोंके सयोगिकेवली, इन चार गुणस्थानोंमें रहनेवाले जीव और अयोगिकेवली तथा सिध्द
अनाहारक होते हैं ॥१७७॥

ये जीव शरीरके योग्य पुद्गलोंका ग्रहण नहीं करते हैं, इसलिये अनाहारक होते हैं ।

इस प्रकार सत्प्ररूपणा-सूत्र-विवरण समाप्त हुआ ।
